कुम्भा माव जी

बनाम

भारत संघ

(महरचन्द महाजन, विवियन बोस एवं जगन्नाथ दास जे. जे.)

भारतीय माध्यस्थम अधिनियम (1940 का प्प्) धारा 14 (2),31 (3) और (4).पंचाट दाखिल करना- निर्णयकर्ता द्वारा पक्षकारों को पंचाट सौंपा गया- पक्षकार द्वारा न्यायालय में दाखिल किया गया- माध्यस्थ और निर्णयकर्ता की अधिकारित की आवष्यकता- पंचाट दो न्यायालयों में दाखिल किया गया- जिस न्यायालय में पहले दाखिल किया गया उस न्यायालय की निष्चायक अधिकारिता- माध्यस्थम के पष्चात पंचाट दाखिल किया गया- धारा 31(4) की प्रयोज्यता - निर्देष में, का तात्पर्य।

बिना माध्यस्थम या निर्णयकर्ता के अधिकृत किए किसी पक्षकार द्वारा न्यायालय में केवल पंचाट दाखिल करना धारा 14 (भारतीय माध्यस्थम अधिनियम 1940) के तहत पर्याप्त पालना नहीं है, न ही यह माना जा सकता है कि केवल मात्र निर्णयकर्ता द्वारा दोनों पक्षकारों को मूल पंचाट सौपें जाने से उसकी ओर से उक्त पंचाट न्यायालय में दाखिल करने की अधिकारिता दे दी गई है- यह अधिकारिता विषेष रूप से कथित व साबित की जानी चाहिये है।

धारा 31(4) भारतीय माध्यस्थम अधिनियम 1940 में शब्दांष- श्एक संदर्भ मेंश् - माध्यस्थम पूर्ण होने व अंतिम पंचाट पारित होने पर प्रथम प्रार्थना पत्र के सबंध में पर्यान्त विस्तृत रूप से लागू होता है और उपधारा अंतिम क्षेत्राधिकारिता का उस न्यायालय में निर्धारण करती है जिसके समक्ष धारा 14 के तहत प्रथम वार पंचाट दाखिल करने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जाता है।प्रत्यर्थी जो कि पंचाट में एक पक्षकार था, उसके द्वारा धारा 14 (2) भारतीय माध्यस्थम अधिनियम 1940 के तहत अधीनस्थ जज गोवाहाटी के समक्ष 10 अगस्त 1949 को एक आवेदन दायर किया गया। जिसमें यह चाहा गया कि निर्णयकर्ता को न्यायालय के समक्ष पंचाट दाखिल करने के निर्देष दिये जा सकते है और इस पर निर्णयकर्ता को 24 अगस्त 1949 से पूर्व न्यायालय के समक्ष पंचाट दाखिल करने का नोटिस जारी किया गया है। जैसा कि मूल पंचाट पक्षकारों को सौंप दिया गया था। निर्णयकर्ता द्वारा 18 अगस्त 1949 को स्वयं के हस्ताक्षरसुदा पंचाट की प्रति डाक से प्रेषित की गई। न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को मूल पंचाट न्यायालय में प्रस्तुत करने का निर्देष दिया गया, जिस पर 03 सितम्बर 1949 को उसके द्वारा पेष किया गया। इसी बीच अपीलार्थी के सॉलिसिटर द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को मूल पंचाट 17 अगस्त 1949 को भेज दिया गया, मूल पंचाट न्यायालय में दाखिल कर लिया गया पंचाट 29 अगस्त को दाखिल कर लिया गया।

अवधारित किया गया:- जैसा कि निर्णयकर्ता द्वारा गोवाहाटी विचारण न्यायाधीष के निर्देष पर 18 अगस्त 1949 को स्वयं के हस्ताक्षरसुदा पंचाट की प्रति न्यायालय को भेजी गयी, धारा 31(3) माध्यस्थम अधिनियम के प्रयोजन हेतु- पूर्ववर्ती दाखिल गोवाहाटी न्यायालय में था, न कि कलकत्ता उच्च न्यायालय में, यद्यपि मूल पंचाट प्रत्यर्थी के द्वारा गोवाहाटी न्यायालय में, अपीलार्थी के सॉलिसिटर द्वारा पंचाट कलकत्ता उच्च न्यायालय में दाखिल किये जाने के बाद किया गया था। इन परिस्थितियों में गोवाहाटी न्यायालय एक मात्र धारा 31 के अधीन विवाद की सुनवाई करने हेतु अधिकारिता रखता है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसलें की पुष्टि की गई।

सिविल अपीलेख अधिकारिता:-सिविल अपील नम्बर 133, 134 ध्1952

कलकत्ता उच्च न्यायालय (हैरीज सी. जे. और बनर्जी जे.) के निर्णय व डिक्री दिनांकित 23.02.1951 से अपीलें कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय व डिक्री दिनांकित 16.12.1949 (सिन्हा जें) से अपील नम्बर 44 ध्1950 इसके सामान्य मूल सिविल अधिकारिता पंचाट में केस नम्बर 208 ध्1949।

एन.जी चटर्जी (अमिया कुमार मुखर्जिया के साथ.)-अपीलार्थी की ओर से

सी. के. दफतरी,सॉलिस्टर जनरल भारत (जी एन जोषी एव जिन्द्रा लाल साथ)- प्रत्यर्थी की ओर से

न्यायालय का निर्णय 16 अप्रैल 1953 पारित किया गया।

जगन्नाथ दास जे- 28.01.1948 को अपीलार्थी, खुम्भा मावजी ने प्रत्यर्थी (डोमिनियम ऑफ इंडिया/तत्कालीन)के साथ एक करार किया, उत्पादन एवं आपूर्ति बंगाल आसाम रेलवे,स्टोन बोल्डर एवं बेलेस्ट का चूटिया पाड़ा खदान से करार कलकत्ता में किया गया,यद्यपि कार्य आसाम में किया जाना था। करार में एक शर्त यह थी कि यदि पक्षकारों के बीच कोई भिन्नता होती है तो यह दो व्यक्तियों के माध्यस्थम जिसमे प्रत्येक पक्ष का एक व्यक्ति नामित होगा, को भेजा जावेगा। अगर माध्यस्थम सहमत नही हो पाते तो दोनों माध्यस्थम द्वारा नामित निर्णायक को मामला भेजा जावेगा। भिन्नता, तथ्यों की, उदभूत विवाद दो माध्यस्थों को भेजा गया,उनकी असहमति पर निर्णायक श्री पी.सी. चौधरी को मामला भेजा गया। निर्णायक ने अपीलार्थी के पक्ष में 20.07.1949 को व उसके लगभग दो पंचाट पारित किये, जिनमे से एक में उसने प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को 3.67 लाख रूपये 19.08.1949 या इससे पूर्व को अदा करने का निर्देष दिया तथा उसके पष्चात व्यतिक्रम होने पर 6% वार्षिक ब्याज देय होगा। अन्य पंचाट में उसने निर्देष दिया कि प्रत्यथी द्वारा अपीलार्थी को 83 हजार रूपये अदा करने का निर्देष दिया, उसके द्वारा प्रत्येक पक्षकार को दो पंचाट मूल रूप से दिया जाना कहा गया। 10.08.1949 को प्रत्यर्थी द्वारा धारा

14(2) के तहत आसाम में गोवाहाटी विचारण न्यायालय में एक प्रार्थना पत्र दायर किया गया तथा प्रार्थना की गई कि निर्णायक श्री पी. सी. चौधरी को दोनों मूल पंचाट न्यायालय में प्रस्तुत करने का निर्देष दिया जावे, जिससे उसे उन पर अपनी आपत्ति दर्ज कराने का अवसर मिल सके। इस प्रार्थना पत्र पर निर्णायक को नोटिस जारी कर 24.08.1949 से पूर्व न्यायालय में पंचाट प्रस्तुत करने हेतु निर्देषित किया गया। निर्णायक द्वारा 18.08.1949 को विचारण जज को पंचाट की प्रति सहित एक पत्र लिखा गया जो निम्नानुसार है-

प्रिय श्री मान,

आपके द्वारा धनवसूली वाद संख्या 63 ध्1949 के सबंध में जारी नोटिस के माध्यम में मेरे द्वारा उपरोक्त विवाद में 20.07.1949 को मेरे द्वारा पारित पंचाटों को प्रस्तुत करने की वांछा की गई जिसके सबंध में निवेदन है कि मेरे द्वारा पक्षकारों की उपस्थिति में 20.07.1949 को दो पंचाट पारित कर मेरे हस्ताक्षर किये गये। आपके निर्देषानुसार पंचाटों की प्रति मेरे हस्ताक्षर सहित भेजी जा रही है, जिनके पीछे की तरफ पक्षकारों द्वारा पंचाट प्राप्ति के हस्ताक्षर किये हुये है।

इस पत्र की प्राप्ति पर विचारक जज द्वारा 24.08.1949 को निम्नानुसार आदेष पारित किया-

श्निर्णायक पर नोटिस तामिल हुआ, उसके द्वारा प्रेषित पंचाट की प्रतियों व रिपोर्ट देखी गई, जिसमें मूल पंचाट पक्षकारों को दिया जाना कहा गया है। अपीलार्थी अपनी पंचाट प्रति 03.09.1949 को प्रस्तुत करे।श्

03.09.1949 को प्रत्यर्थी ने निर्णायक द्वारा उसे दिये गये पंचाट को प्रस्तुत किया जिस पर विचारण न्यायालय गोवाहाटी में मामला अग्रिम नोटिस एवं आपत्ति प्रस्तुत किये जाने वाले बिन्दुओं पर आगे बढ़ा।

इसी बीच 17.08.1949 में प्रत्यर्थी द्वारा गोवाहाटी न्यायालय में प्रथम आवेदन दाखिल किये जाने के एक सप्ताह बाद, अपीलार्थी नें सॉलिसिटर जनरल मेसर्स,मुखर्जी एवं विष्वास द्वारा उच्च न्यायालय के रजिस्टार को एक पत्र भेजा गया, जो निम्नानुसार है-

हमारे मुवक्किल श्री कुम्भा माव जी की ओर से निर्णयकर्ता श्री पी. सी. चौधरी द्वारा दिनांक 20.07.1949 को हस्ताक्षरित दो मूल पंचाट जो यथोचित स्टाम्पित है, जो क्रमषः 3,67,000 रूपये व 83,000 रूपये की राषि हेतु है, संलग्न कर प्रस्तुत किये जो रहेे है। अतः कृप्या कार्यालय को निर्देषित करे कि उक्त दोनों पंचाटों को षामिल करें व अविलम्ब नोटिस जारी करेेंं।

कुछ अन्य पेपरों के बारे में डिप्टी रजिस्टार व सोलिसिटरों के बीच पत्राचार होने के बाद डिप्टी रजिस्टार द्वारा सोलीसीटर्स को अपने पत्र दिनांकित 29.08.1949 द्वारा सूचित किया गया कि पंचाट शामिल कर लिया गया है,तथा सोलीसीटर्स को न्यायालय से नोटिस लेने व सम्बधित

पक्षकारों पर नोटिस तामिल कराने को कहा,तथा वैधानिक नोटिस में पंचाटों पर कर्मिषियल जज द्वारा निर्णय पारित करने हेतु दिनांक निष्चित करने हेतु कहा गया।दोनों पक्षकारों को नोटिस जारी किये गये, जिनमें निम्न शर्तें थी-

1. कुम्भा मावजी

2. आसाम रेलवे-प्रतिनिधी भारत गणराज्य की ओर से,

सूचित रहे कि उपरोक्त माध्यस्थम करार के मामले में नियुक्त निर्णयकर्ता द्वारा 29.08.1949 को पंचाट पारित किया है, वाणिज्यिक हेतुक सुनवाई न्यायालय द्वारा उक्त पंचाट पर दिनांक 07.11.1949 को निर्णय सुनाया जावेगा।

दिनांक 29.08.1949

उक्त नोटिस प्रत्यर्थी पर 02.09.1949 को तामिल हुआ, उपरोक्त पंचाटों के सम्बंध में कार्यवाही धारा 14(2) भारतीय माध्यस्थम अधिनियम में कार्यवाही संस्थित हुई, समानान्तर रूप से आसाम में विचारण न्यायालय गोवाहाटी में तथा मूल रूप में कलकत्ता उच्च न्यायालय में। गोवाहाटी न्यायालय द्वारा 03.09.1949 को जारी नोटिस के जवाब में अपीलार्थी 28.10.1949 को न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ तथा समय समय पर 10.12.1949 तक स्थगन लेता रहा। उक्त दिनांक को गोवाहाटी कोर्ट ने उसकी अग्रिम/ आगामी स्थगन की प्रार्थना अस्वीकार कर दीतथा एक पक्षीय सुनवाई हेुत आगामी दिनांक 20.01.1950 नियत कर दी। इसी बीच

प्रत्यर्थी को कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी नोटिस मिलने पर 24.11.1949 को 15.11.1949 को शपथ पत्र दाखिल किया गया, जिसमें कलकत्ता न्यायालय में क्षेत्राधिकार सम्बंधी आपत्ति तथा पंचाटों की वैधता का प्रष्न उठाया। उसी दिन प्रति शपथ पत्र 19.11.1949 का दिनांकित अपीलार्थी की ओर से दाखिल किया गया। इन शपथ पत्रों के आधार पर मामला विचारार्थ वाणिज्यिक जज कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 16.12.1949 को लिया गया। विद्वान जज द्वारा प्रत्यर्थी की आपत्तियां खारिज कर दी गई और दोनों पंचाटों पर निर्णय पारित किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा खंड पीठ में इसकी अपील किये जाने पर विद्वान खंडपीठ के जजों द्वारा एकल पीठ का निर्णय बदल दिया गया। उन्होंने अवधारित किया कि धारा 14(2) भारतीय मध्यस्थता अधिनियम के तहत कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन उचित नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप उस न्यायालय को मामले की सुनवाई अधिकारिता नहीं थी।विद्वान एकल जज के समक्ष प्रत्यर्थी ने दिनांक 15.11.1949 के पैरा 14 में मुख्य आपत्ति ली गई थी कि

- श्आगे मेरा निवेदन है कि डोमिनियन ऑफ इंडिया द्वारा धारा 14(2) का प्रार्थना पत्र गोवाहाटी कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया था,श् इस उच्च न्यायालय के कुम्भा मावजी द्वारा पंचाट प्रस्तुत किये जाने से पूर्व ही गोवाहाटी न्यायालय को एकमात्र क्षेत्राधिकारिता थी।

धारा 31(1) भारतीय मध्यस्था अधिनियम में यह प्रावधान है कि - संदर्भ संबंधी किसी भी मामले में एक पंचाट किसी भी क्षेत्राधिकारिता वाले

न्यायालय में पेष किया जा सकता है। इस मामले में उस संविदा का संदर्भ प्रकट हुआ, जिसमें पहले कहा जा चुका है कि संविदा कलकत्ता में हुई तथा जिसका निष्पादन आसाम में किया जाना था। इसलिये स्वीकृत रूप में गोवाहाटी न्यायालय व कलकत्ता उच्च न्यायालय को संदर्भ से संबधित विषय वस्तु में अधिकारिता प्राप्त थी। विचार बिंदु यद्यपि प्रत्यर्थी की ओर से प्रस्तुत आपत्ति के सबंध में यह था कि धारा 31 (4) के सबंध में, जबकि तथ्य यह था कि एक प्रार्थना पत्र अंतगर्त धारा 14(2) में गोवाहाटी न्यायालय में 10.08.1949 को निर्णयकर्ता से पंचाट प्रस्तुत किये जाने में निर्देष हेतु प्रस्तुत की जा चुकी थी। उस न्यायालय द्वारा उसी दिनांक से मामले को अधिग्रहित कर लिया गया था, इसलिये पष्चातवर्ती तारीख को धारा 14 का अन्य न्यायालय में प्रस्तुत प्रार्थना पत्र धारा 31(4) के तहत निषेधित था। यह मुख्य प्रष्न था जो कि विद्वान एकल जज के समक्ष गंभीरता से उठाया गया था। लेकिन विद्वान एकल जज का विचार था कि धारा 31(4) का सबंध केवल उन प्रार्थना पत्रों से था जो माध्यस्थम के निर्देष के लंबित रहने के दौरान पेष की गई थी न की पंचाट पारित किये जाने के बाद प्रस्तुत प्रार्थना पत्रों से। उनका मानना है कि पंचाट प्रस्तुत किये जाने सबंधी प्रार्थना पत्रों के सम्बध में निष्चायक विचार था कि धारा 31(4) का सबंध केवल उन प्रार्थना पत्रों से था जो माध्यस्थम के निर्देष के लंबित रहने के दौरान पेष की गई थी न की पंचाट पारित किये जाने के बाद प्रस्तुत प्रार्थना पत्रों से। उनका मानना है कि पंचाट प्रस्तुत किये जाने सबंधी प्रार्थना पत्रों के सबंध में निष्चायक क्षेत्राधिकार का निर्धारण इस

प्रष्न के सदर्भ में कि जिस न्यायालय का पंचाट है उस न्यायालय की सक्षमता होगी, जिसमें धारा 14(2) के तहत प्रथम बार प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया है (वैसे ही भिन्न है जैसे कि पंचाट प्रस्तुति हेतु प्रार्थना पत्र पहले प्रस्तुत किया गया है) इस दृष्टिकोण से विद्वान जज द्वारा यह अवधारित किया गया कि पंचाट सर्वप्रथम कलकत्ता उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया गया, न कि गोवाहाटी कोर्ट में। इसी आधार पर उन्होंने यह अवधारित किया है कि धारा 31(3) के सबंध में कलकत्ता उच्च न्यायालय को एक मात्र क्षेत्राधिकारिता प्राप्त है और इसी आधार पर पंचाट पर निर्णय पारित किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा उसके समक्ष समय पर आपत्तियां प्रस्तुत नहीं की गई थी।

अपील में विद्वान जजों से अनावष्यक माना गया कि एकल जज द्वारा पारित निर्णय के आधारों को विचार में लेकर निर्णय पारित किया जावे। और उन्होनें अवधारित किया कि- तथ्यों से यह बिल्कुल साफ है कि कलकत्ता कोर्ट में धारा 14(2) के तहत पंचाट सम्यकरूप से प्रस्तुत नहीं किये गये थे, जो पंचाट सम्यकरूप से प्रस्तुत किया जाना दावा किया गया वे पंचाट भी निर्णयकर्ता द्वारा प्रस्तुत नहीं किये गये थे, न ही वे उसके अधिकार से प्रस्तुत किये गये थे। इस सीमित आधार पर उन्होनें एकल जज का निर्णय पलट दिया और दो पंचाटों के आधार पर अपीलार्थी के पक्ष में किये गये फैसले को अपास्त कर दिया। परिणामस्वरूप ये दों अपीलें हमारे समक्ष पेष हुई है-

उपर दिये गये तथ्यों के आधार पर तीन प्रष्न विचार योग्य उत्पन्न हुये है-

(1) क्या अपीलार्थी के पास निर्णयकर्ता का प्राधिकार धारा 14(2) के तहत उसकी ओर से पंचाट न्यायालय में दाखिल करने का है?

(2)क्या धारा 31(3) के तहत यह कहा जा सकता है कि कलकता उच्च न्यायालय में गोवाहाटी न्यायालय से पूर्व पंचाट फाइल किये गये?

(3) क्या धारा 31 (4) का विस्तार केवल माध्यस्थम कार्यवाहीयों के लम्बित रहने के दौरान किये गये प्रार्थना पत्रों तक सीमित है?

जहां तक प्रथम प्रष्न का सबंध है, धारा 14 (2) प्रावधान करती है कि-

मध्यस्थ या अंपायर, मध्यस्था समझौते के किसी भी पक्ष के अनुरोध पर या ऐसी पार्टी के तहद दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के अनुरोध पर या यदि न्यायालय द्वारा निर्देषित हो और पुरस्कार के संबंध में देय शुल्क और शुल्क के भुगतान पर और पुरस्कार दाखिल करने की लागत और शुल्क के लिये, पुरस्कार या उसकी एक हस्ताक्षरित प्रति, किसी भी बयान और दस्तावेजों के साथ, जो उनके सामने लिऐ गये, लिए गए और साबित किये गऐ हो, अदालत में दाखिल किए जाऐगें, और अदालत इसके बाद नोटिस देगी पुरस्कार दाखिल करने वाले पक्षों को।

यह धारा स्पष्टरूप से प्रावधान करती है कि जहां पंचाट अथवा एक हस्ताक्षरयुक्त प्रति न्यायालय में किसी पक्षकार द्वारा फाईल की जाती है, तो

उसे ऐसा करने का निर्णयकर्ता का प्राधिकार होना चाहिये। यह किसी कीमत पर, इस मान्यता पर उच्च न्यायालय में प्रष्न किया गया, हमारे समक्ष यह प्रष्न नहीं उठाया गया कि न्यायालय में पक्षकार द्वारा स्वयं पंचाट प्रस्तुत किया गया है, न कि निर्णयकर्ता द्वारा उसे ऐसा करने का प्राधिकार दिये जाने पर, यह इस धारा की पर्याप्त पालना है। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायधीषगण इस विचार कें थे कि मामले के साक्ष्य से निर्णयकर्ता के प्राधिकार से अपीलार्थी को मूल पंचाट उसकी ओर से न्यायालय में दाखिल किये जाने की अनुमति दर्षित नहीं होती है। हमारे समक्ष यह तर्क दिया गया है कि शपथ पत्र दिनांकित 19.11.1949 के पैरा संख्या 7 में जो कि अपीलार्थी की ओर से उच्च न्यायालय दिनांक 24.11.1949 कों प्रस्तुत किया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि 21.07.1949 को अथवा उसके लगभग उक्त निर्णयकर्ता द्वारा असल पंचाट उक्त पक्षकार को दाखिल करने को कहा गया था। यह कहा गया कि यह तर्क निर्णयकर्ता के अपेक्षित प्राधिकार के बारे में है। और यह दर्षित किया गया है कि इस अभिकथन का खंडन विपक्षी पक्षकार द्वारा जवाब के शपथ पत्र में नहीं किया गया है। यह माना जा सकता है कि प्रस्तुत किया जाना वैध था। विद्वान न्यायधीषगण दो तथ्यों पर विष्वास करते हुये विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचे, नामतः-गोवाहाटी न्यायालय द्वारा निर्णयकर्ता को जारी नोटिस के जवाब में लिखे गये पत्र दिनांकित 18.08.1949 के साथ भेजे गये पंचाट की प्रतियों में केवल यह लिखा कि उसने दोनों पक्षकारों को पंचाट सौंप दिया है, लेकिन उसके द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया कि उसके

द्वारा उसकी ओर से न्यायालय में उक्त पंचाट प्रस्तुत किये जाने का प्राधिकार दिया गया। हम इस तर्क से सहमत नहीं है। इस मामले में, जहां मूल पंचाट दोनों पक्षकारों को सौंप दिया जाना कहा गया है, तो यह नहीं माना जा सकता कि केवल मात्र पंचाट पक्षकारों को सौप दिया जाना उन्हें निर्णयकर्ता की ओर से न्यायालय में प्रस्तुत किये जाने का प्राधिकार दे दिया गया हों। विद्वान न्यायाधीषगण भी इसी विचार के थे कि निर्णयकर्ता से भी एक प्रज्ञावान व्यक्ति की तरह दोनों पक्षकारों को पंचाट उसकी ओर से न्यायालय में पेष करने हेतु प्राधिकार देने की कल्पना नहीं की जा सकती है । यह प्राधिकार विषेष रूप से कथित किया जाना व साबित किया जाना होता है।

प्रस्तुत मामले में विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे सामने शपथ पत्र में अंकित कथन का तर्क देना यह माने जाने से.अधिक कुछ नही है कि निर्णयकर्ता द्वारा असल पंचाट अपीलार्थी को प्रस्तुत करने हेतु सौपे गये थे, लेकिन इस सम्बंध में कोई कथन नहीं है कि वे निर्णयकर्ता की ओर से प्रस्तुत किये जाने के लिये सौपे गये थे। निर्णयकर्ता इस बात से अवगत नहीं हो सकता कि पंचाट न्यायालय में केवल उसके द्वारा या उसके प्राधिकार से ही प्रस्तुत किये जाने चाहिये।

अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि- उच्च न्यायालय के एकल जज के सामने अपीलार्थी की ओर से निर्णयकर्ता के प्राधिकार से पंचाट फाईल किये जाने की आपत्ति नहीं उठाई गयी थी।

इसलिये इस तरह की आपत्ति अपील में प्रथम बार नहीं ली जा सकती। इसमें कोई सदेंह नहीं है कि यह सत्य है कि न तो प्रत्यर्थी की और से दायर शपथ पत्र में, न ही विद्वान एकल जज के निर्णय में इस बात का कोई सकेत है कि यह प्रष्न प्रथम बार के न्यायालय में उठाया गया हो। बल्कि विद्वान न्यायधीषों ने अपील में अपने निर्णय के निष्कर्ष भाग में इसे देखते हुये इसके बारे में यह कहा है -

> "श्यह प्रतीत नहीं होता है कि जिस आधार पर अपील की गई है वह तर्क नीचे के न्यायालय में दिया गया है। लेकिन यह विधि का प्रष्न है और हमारे समक्ष अपीलार्थी द्वारा हमारे सामने बिदुं उठाने पर प्रत्यर्थी द्वारा कोई आपत्ति नहीं की गई है।"

यद्यपि यह देखना कठिन है कि जो प्रष्न उठाया गया है वह शुद्ध विधि का प्रष्न है। उपरोक्त उद्धरण सें यह बिल्कुल साफ है कि उठाये गये बिन्दुओं के सबंध में प्रत्यर्थी द्वारा कोई आपत्ति नहीं ली गई हैं। हमारे समक्ष यह सुझाव नहीं दिया गया है कि निर्णय में यह कथन किसी भी प्रकार से गलत था। अपीलार्थी के अधिवक्ता का तर्क है कि-यदि अपील मंे विद्वान न्यायाधीषगण को यह महसूस हो कि केवल इसी बिन्दु के आधार पर मामले का निस्तारण नहीं किया जाना चाहिये तो उन्हें निर्णयकर्ता को यह स्पष्ट.करने के लिये कि क्या अपीलार्थी के पास उसका प्राधिकार था या नहीं, बुलाया जाना चाहिये अथवा उसके प्राधिकार के सबंध में उसका शपथ

पत्र पेष करने का अवसर दिया जाना चाहिये। विद्वान अधिवक्ता द्वारा बलपूर्वक तर्क दिया गया कि अब भी अवसर दिया जाना चाहिये। यद्यपि यह प्रतीत नहीं होता कि यह आवष्यक अथवा वांछनीय होगा इस स्तर, पर काफी समय व्यतीत होने पर, इस प्रयोजन के लिये मामले पर वापस जाना, क्योंकि प्राधिकार के सबूत की आवष्यकता के प्रष्न के अलावा यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के मामलों मे, व उपरोक्त कथित तथ्यों में यह अपीलार्थी पर आश्रित था कि वह धारा 4(2) के तहत निर्णयकर्ता का प्राधिकार होना कथित करता। इस प्रकार के अभिकथन न केवल 19.11.1947 के शपथ पत्र में होने चाहिये बल्कि ये ओर महत्वपूर्ण है कि 17.08.1949 को अपीलार्थी की ओर से सॉलिसिटर द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत पंचाट जो कि न्यायालय में प्रारंभिक प्रार्थना पत्र माने जा सकते है, उसमें भी एक भी शब्द यह नहीं दर्षाता कि निर्णयकर्ता के प्राधिकार से पंचाट प्रस्तुत किये गये हो।पत्र में केवल मात्र यह कथन था कि निर्णयकर्ता के द्वारा हस्ताक्षरित दो मूल पंचाट संलग्न कर प्रस्तुत किये जा रहे है, इस निवेदन के साथ की कार्यालय को निर्देषित करे कि इन दोनों पंचाटों को संलग्न करे, एवं अविलम्ब नोटिस जारी किये जावे।इन परिस्थितियों में धारा 14 (2) की शर्तों की अनुपालना साफ तौर पर नहीं होती कि अपीलार्थी की सॉलिसिटर की ओर से प्रस्तुत पंचाट निर्णयकर्ता की ओर से प्रस्तुत किये गये हो।

जहां तक दूसरे प्रष्न का सम्बध है कि- धारा 31(3) के तहत पंचाट पहले कलकत्ता न्यायालय में प्रस्तुत किया गया अथवा गोवाहाटी न्यायालय में। वाणिज्यिक न्यायाधीष द्वारा लिया गया दृष्टिकोण यह था कि कलकत्ता न्यायालय में पहले प्रस्तुत किया जाना माना जाना चाहिये। इस प्रष्न पर विचार करने के उददृश से यह माना जा सकता है कि निर्णयकर्ता के प्राधिकार से प्रस्तुत किया गया था। विद्वान न्यायाधीष का विचार था कि विचारण न्यायालय के पूर्वआदेष दिनांकित 24.08.1949 के अनुपालना में गोवाहाटी न्यायालय में 03.09.1949 को पंचाट दाखिल किये जाने माने जाने चाहिये, प्रत्यर्थी स्वयं उपस्थित होकर न्यायालय में मूल पंचाट दाखिल किये गये है। विद्वान न्यायाधीष द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने में इस तथ्य की उपेक्षा की गयी कि 18.08.1949 को निर्णयकर्ता द्वारा उसे पूर्व में जारी नोटिस की अनुपालना में 24.08.1949 को या उससे पूर्व पंचाट की स्वयं की हस्ताक्षरित प्रतियां प्रेषित की जा चुकी थी। यह धारा 14(2) की पर्याप्त अनुपालना दर्षित करता है, जिसमें केवल यह आवष्यक है कि न्यायालय के निर्देषानुसार निर्णयकर्ता द्वारा मूल पंचाट अथवा उसकी प्रति पेष कर दी जावे। विद्वान न्यायाधीष का विचार था कि उसे जानकारी नहीं थी कि विचारण न्यायाधीष को भेजी गयी प्रतियां हस्ताक्षरित थी अथवा नहीं। दुर्भाग्य से विद्वान न्यायाधीष यह देखने में असफल रहा कि निर्णयकर्ता द्वारा स्वयं के पत्र दिनांकित 18.08.1949 में यह साफ लिखा था कि

"आपके निर्देषानुसार मैं पंचाट की प्रतियां मेरी हस्ताक्षरित की हुई भेज रहा हूं।"

विद्वान न्यायाधीष भी इस बारे में सोचने पर सहमत था कि केवल मात्र पंचाटों का भेजा जाना उनका प्रस्तुत किया जाना नहीं माना जा सकता। पुनः यहां विद्वान न्यायाधीष द्वारा इस बात की उपेक्षा कर दी गई कि धारा 14(2) में निर्णयकर्ता द्वारा वास्तविक प्रस्तुति आवष्यक नहीं है लेकिन मात्र इतना ही पर्याप्त है कि निर्णयकर्ता पंचाटों का प्रस्तुतीकरण करें। यह सूझाव नहीं दिया गया कि नोटिस के अनुपालना में डाक द्वारा भेजा जाना इस प्रकार की वजह नहीं होती।

इसलिये हमें यह साफ दर्षित होता है कि गोवाहाटी कोर्ट में पंचाटों का प्रस्तुतीकरण 24.08.1949 को हो चुका था। जहां तक कलकत्ता न्यायालय का प्रष्न है, इसमें कोई सदेंह नहीं है कि उस न्यायालय में अपीलार्थी के सॉलिसिटर द्वारा 17.08.1949 को पंचाट पेष किये गये थे, यह रजिस्टार द्वारा जारी नोटिस दिनांकित 30.08.1949 से दर्षित होता है कि पंचाट प्रस्तुत किये गये दिनांक 29.08.1949 को माने गये। 24.11.1949 को कलकत्ता न्यायालय में प्रत्यर्थी द्वारा पेष शपथ पत्र के पैरा 8,9 में यह श्रेणी वार अभिकथन किये गये है कि जहां तक गोवाहाटी न्यायालय का सबंध है, निर्णयकर्ता द्वारा 24.08.1949 को पंचाट की प्रतियां प्रस्तुत कर दी गयी है, जबकि कलकत्ता उच्च न्यायालय के सबंध में पंचाट 29.08.1949 को प्रस्तुत किये गये। यह अभिकथन अपीलार्थी द्वारा उसी

दिन पेष किये गये प्रति शपथ पत्र में खंडित नहीं किये गये है। उक्त तथ्यों से यह साफ है कि धारा 31(3) के प्रयोजन से श्पूर्व में प्रस्तुत कियाश् जाना गोवाहाटी न्यायालय में है न की कलकत्ता उच्च न्यायालय में, जैसा कि विद्वान एकल जज द्वारा तथ्यों की गलत धारणा में अवधारित किया गया। इस स्तर पर हम यह उल्लेख करना चाहेगें कि हमारे समक्ष यह सुझाव नहीं आये कि विधिक उददेष्योेंं के लिये कलकत्ता उच्च न्यायालय में पंचाट प्रस्तुति (निर्णयकर्ता की ओर से अपीलार्थी द्वारा पंचाट प्रस्तुती की प्राधिकारिता के अस्तित्व की अवधारणा पर) 29.08.1949 को नहीं बल्कि 10.08.1949 को थी, जबकि सॉलिसिटर्स द्वारा रजिस्टार को पंचाटों को संलग्न कर पत्र भेजा गया था। हम यह उल्लेख इसलिये कर रहे है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय से यह दर्षित होता है कि इस प्रकार के बिंदु वहां उठाये गये थे, लेकिन हमारे समक्ष उसके विपरीत माना गया है। हम इस विचार के है कि यद्यपि निर्णयकर्ता का प्राधिकार उसकी ओर से पंचाट न्यायालय में प्रस्तुतीकरण हेतु अपीलार्थी द्वारा प्राप्त कर लिया गया हो तो भी, पहले पंचाट प्रस्तुतीकरण गोहावाटी न्यायालय में माना जावेगा। इस आधार पर, इसलिये हम अवधारित करते है कि गोवाहाटी न्यायालय को ही धारा 31(3) में एक मात्र अधिकारिता थी।

तीसरा प्रष्न जो विचारार्थ रहा है कि वह है कि क्या धारा 31 (4) भारतीय मध्यस्थता अधिनियम केवल वहां लागू होगा जहां प्रथम आवेदन किया गया है जहां माध्यस्थम के समक्ष संदर्भ लंबित हो, अथवा वहां भी

लागू होगा जहां वर्तमान मामला जैसा कि है, जहां प्रथम प्रार्थना पत्र माध्यस्थम कार्यवाही पूर्ण होने पर प्रस्तुत किया गया हो एवं जहां पंचाट जारी हो गया हो। जैसा कि पहले कहा गया है कि, विद्वान न्यायाधीषों द्वारा अपील में इस बिदुं पर विचार नहीं किया गया है। यद्यपि विचारण न्यायाधीष द्वारा मामले पर विचार करते हुये अवधारित किया गया है कि उपरोक्त प्रावधान केवल उन्हीं प्रार्थना पत्रों से सबंधित है जो माध्यस्थम निर्देष के लंबित रहने के दौरान पेष हुई हो, विद्वान न्यायधीष के दृष्टिकोण से-

"श्उक्त धारा(4) के लागू होने के लिये प्रार्थना पत्र निर्देंष के लंबित रहने के दौरान प्रस्तुत की गई हो, और अगर ऐसा प्रार्थना पत्र पेष होता है तो अन्य सभी प्रार्थना पत्र जो इस निर्देष के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो (चाहे निर्देष में पेष हो या नहीं) उसी न्यायालय में पेष होने चाहिये।"

जाहिर तौर पर विद्वान न्यायाधीष द्वारा शब्दांष श् निर्देष मेंश् का निवर्चन धारा 31 (4) में- श्निर्देष के दौरानश् के अर्थों में किया गया है और यह अभिकथन हमारे समक्ष अपीलार्थी अधिवक्ता द्वारा भी किया गया है जिसकी बारीकी जांच की आवष्यकता है।

धारा 31 भारतीय माध्यस्था अधिनियम 1940 के निम्नानुसार है-

(1) इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, सदंर्भ से संबंधित मामले में अधिकार क्षेत्र वाले किसी भी न्यायालय में एक पुरस्कार दायर किया जा सकता है।

(2) तत्समय लागू किसी भी अन्य कानून में किसी बात के होते हुये भी और इस अधिनियम में अन्यथा प्रदान किये गये को छोड़कर, समझौते के पक्षकारों या व्यक्तियों के बीच किसी पुरस्कार या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के सबंध में सभी प्रष्न उनके तहत दावा करने का निर्णय उस न्यायालय द्वारा किया जायेगा जिसमें समझौते के तहत पुरस्कार दायर किया गया है, या दायर किया जा सकता है, और किसी अन्य न्यायालय द्वारा नहीं।

(3) मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन के संबंध में या अन्यथा ऐसी कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदन उस न्यायालय में किऐ जायेगें जहां पुरस्कार दिया गया है, या दायर किया जा सकता है, और किसी अन्य न्यायालय में नहीं।

(4) इस अधिनियम में या कुछ समय के लिए लागू किसी अन्य कानून में कहीं भी कुछ भी शामिल होने के बावजूद, जहां किसी भी संदर्भ में इस अधिनियम के तहत कोई भी आवेदन उस पर विचार करने के लिए सक्षम न्यायालय में किया गया है, उस न्यायालय के पास अकेले ही उस पर अधिकार क्षेत्र होगा। मध्यस्थता कार्यवाही, और उस संदर्भ में उत्पन्न होने वाले सभी बाद के आवेदन, और मध्यस्थता कार्यवाही उस न्यायालय में की जाएगी और किसी अन्य न्यायालय में नहीं की जाएगी।

उपधारा 31 (1) इस प्रष्न से सबंधित है कि जहां एक पूर्ण पंचाट प्रस्तुत कर दिया गया है और स्थानीय क्षेत्राधिकार इस प्रयोजन से

प्रावधानित करता है।उपधारा 31 (2) उक्त क्षेत्राधिकार के उपयोग के विस्तार के सबंध में है। ओर यह कहते हुये निष्चायक घोषणा करती है कि-श्समझौते के पक्षकारों या व्यक्तियों के बीच किसी पंचाट या मध्यस्था समझौते की वैधता प्रभाव या अस्तित्व के सबंध में सभी प्रष्न उनके तहत दावा करने का निर्णय उस न्यायालय द्वारा किया जायेगा जिसमें करार के तहत पंचाट दायर किया गया है या दायर किया जा सकता है,श् किसी अन्य न्यायालय द्वारा नहीं। उपधारा 31(3) यह प्रावधान था कि-माध्यस्थम कार्यवाही के संचालन के संबध में अथवा ऐसी कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदन उस न्यायालय में किये जावेगें जहां पंचाट दिया गया है या दायर किया जा सकता है और संबधित पक्षकारों पर ऐसा करने का दायित्व डालती है।उपधारा 31(4) जिसका जाहिर तौर पर उददेष्य उपधारा(3) से आगे है। वह है कि न केवल पक्षकारों पर यह दायित्व है कि वे एक ही न्यायालय मे सभी आवेदन दायर करे बल्कि ऐसे आवेदनों के लिये निष्चायक क्षेत्राधिकार उसी न्यायालय का होगा जिसमें प्रथम आवेदन किया गया है।

इस प्रकार यह विस्तृत दृष्टिकोण धारा 31 का दिखाता है कि-जहां उक्त धारा (1) इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार तय करता है जहां पंचाट दायर किया जा सकता है उप धारा 2,3, व 4 का उददेष्य उक्त क्षेत्राधिकार को तीन विभिन्न माध्यमों से प्रभाव शाली बनाना है-(1) एक पंचाट की वैधता, प्रभाव व अस्तित्व संबधी प्रष्नों व एक माध्यस्थम समझौते के

सबंध में सभी प्रष्नों का अवधारण एक ही न्यायालय द्वारा करने,(2) सबंधित व्यक्तियों पर यह दायित्व डालना कि माध्यस्थम कार्यवाहीयों के आचारण संबधी व उन कार्यवाहीयों से उत्पन्न सभी आवेदन एक ही न्यायालय में दायर किये जावे।(3) उसी न्यायलय को निष्चायक क्षेत्राधिकार प्रदान करना जहां मामले से सबंधित प्रथम आवेदन दायर किया गया है।उपधारा(4) का क्षेत्र यह दिखाई देता है कि उपधारा का आषय केवल माध्यस्थम कार्यवाहीयों से लम्बित रहने के दौरान किये गये आवेदनों तक सीमित नहीं है।

एक न्यायालय को प्रभावी एवं निष्चायक क्षेत्राधिकारिता प्रदान करने की आवष्यकता, उक्त तीनों प्रावधानों की एक साथ कार्यवाही, विरोधाभास व छीनाझपटी से बचने के लिये उतना ही आवष्यक है जहां माध्यस्थों कार्यवाही वीलम्बन के दौरान अथवा कार्यवाही समाप्त होने पर प्रष्न उत्पन्न होते हो अथवा जहां माध्यस्थम कार्यवाही सम्पन्न होने से पूर्व प्रष्न उत्पन्न होते है।

यहां कोई बोधगम्य कारण दिखाई नहीं देता है कि विधायिका का आषय उपधारा(4) की प्रयोजिता माध्यस्थम कार्यवाहीयों के लंबन के दौरान दायर आवेदनों तक ही क्यों सीमित रहा है, शब्दांष- शिकसी भी निर्देष मेंश् का अर्थ- श्एक निर्देष की कार्यवाही के दौरानश् से लेना चाहिये।

यह देखा गया कि माध्यमस्थ अधिनियम तीन तरह के माध्यस्थमों से संबधित है-1. न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना माध्यमस्थ, धारा 3 से 19

अध्याय 2(2) न्यायालय के हस्तक्षेप वाले माध्यम,जहां कोई दावा लंबित ना हो-धारा 20 का परंतुक-अध्याय 3(3) दावों में माध्यस्थम, धारा 21 से 25-अध्याय 4 बाद में दोनों माध्यमस्थों से संबधित क्षेत्राधिकार के सम्बध में धारा 20(1) एवं धारा 21 है।धारा 31 उपधारा(1) प्रथम प्रकार के माध्यस्थ से सबंधित है।इसलिये यह हो सकता है कि अनुग्रहिता पूर्वक सूझाव दिया जा सके कि उपधारा 2,3 व 4 केवल इसी कोटी के माध्यस्थम से सबंधित है, लेकिन इस प्रकार की स्थिति हमारे समक्ष नहीं लाई गयी।यद्यपि इन उपधाराओं में विस्तृत भाषा का प्रयोग हुआ है, यह मान्यता है कि उपधारा 2, व 3 सभी प्रकार के माध्यमस्थों को समाहित कर लेती है अगर ऐसा है तो क्या कोई पर्याप्त कारण है कि उपधारा 4 की प्रयोज्यता सीमित है? अपीलार्थी हेतु उपधारा 4 पर विचार करते हुये - ना केवल पंचाट पारित होने के बाद प्रस्तुत आवेदन उपधारा धारा 4 से अपवर्जित किये जाने चाहिये बल्कि माध्यस्थम कार्यवाही प्रारंभ होने से पूर्व किये गये आवेदन जैसे- निर्देष के करार का दायर किया जाना और उस पर निर्देष हेतु।.यह ध्यान रखना चाहिये कि धारा 31 धाराओं का एक समूह है जिसका शीर्षक- सामान्य जो धारा 26 के अनुसार सभी माध्यमस्थों पर लागू होता है। अन्यथा धारा 31(4) के शब्दों का सीमित उपयोग माध्यस्थम के लंबित रहने के दौरान किये गये आवेदनों तक ही होगा, ऐसा सीमित अर्थान्वयन खारिज किया जाना चाहिये।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि सीमित अर्थान्वयन का संपूर्ण आधार शब्दांष- शिकसी भी निर्देष में है,श् जो उपधारा (4) में प्रयुक्त- शिकसी भी निर्देष के दौरानश् से है।

लेकिन इस प्रकार का अर्थ साधारण समझ के आधार पर विवष्तापूर्वक नहीं लिया जा सकता है।शब्दांष-में विभिन्न संदर्भों में उपयोग किया जाता है, और इसके बहुत सारे अर्थ निकाले जा सकते है.। ऑक्सफोर्ड डिक्षनरी में इसका एक अर्थ-श्निर्देष व्यक्त करना अथवा किसी चीज से सम्बधित, निर्देष में अथवा बारे में, मामले में, प्रकरण में, मामला अथवा प्रदेष का है।

श्विषेषकर गृह के साथ प्रयुक्त अथवा रिष्ते के विभाग में,अथवा गुण अथवा गुणवक्ता के सबंध में अनुमान लगाना।

धारा 31 उपधारा(4) के संदर्भ में यह सोचना उचित है कि शब्दांष- शिकसी निर्देष मंेश्ं का मतलब है- श्एक निर्देष के मामलेश् में- निर्देष शब्द का अर्थ अधिनियम में - 'माध्यस्था को निर्देष' के रूप में परिभाषित किया गया है। शब्दांष-श्निर्देष मेंश् इसलिये पर्याप्त व्यापक है, माध्यस्थम कार्यवाही पूर्ण होने के बाद प्रस्तुत किसी आवेदन और अंतिम पंचाट बनने पर पेष होने वाले आवेदनों तक। हमारे विचार में यही सही अर्थान्वयन है। इसलिए हम इस विचार के है कि धारा 31(4) किसी न्यायालय में निष्चायक क्षेत्राधिकार का निर्धारण करती है जहां एक आवेदन प्रथम बार पंचाट प्रस्तुति के सबंध में धारा 14 के तहत प्रथम बार किया गया है।

ष्यह र्निविवादित है कि प्रत्यर्थी- भारत संघ द्वारा आवेदन गोवाहाटी न्यायालय में 10.08.1949 को दायर कर दिया गया था, और अपीलार्थी द्वारा प्रथम उपस्थिति कलकत्ता न्यायालय में 17.08.1949 को दी गई थी। इन तथ्यों पर तथा धारा 31(4) के अर्थान्वयन के आधार पर जो कि हमने लिया है, यह साफ है कि वर्तमान विवाद के संबध में केवल गोवाहाटी न्यायालय कोे क्षेत्राधिकारिता है, न कि कलकत्ता उच्च न्यायालय को हो।

परिणाम के तौर, दोनों अपीलें सव्जय खारिज की जाती है।

अपील खारिज।

अपीलार्थी की ओर से अभिकृता- सुकुमार घोष

प्रत्यर्थी की ओर से अभिकृता- जी.एच. राजाध्यक्ष

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री लेखपाल शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा